जनसत्ता

8 जून, 2019

एक और झटका

लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की जो दशा हुई है, उससे पार्टी के भविष्य को लेकर लोगों और कार्यकर्ताओं के मन में सवाल खड़े होना स्वाभाविक है। पार्टी के कई नेता और कार्यकर्ताओं को अब अपना भविष्य खतरे में लगने लगा है। तेलंगाना इसका ताजा उदाहरण है। गुरुवार को तेलंगाना में कांग्रेस के कुल अठारह में से बारह विधायक तेलंगाना राष्ट्र समिति (टीआरएस) में शामिल हो गए। विधानसभा अध्यक्ष ने इन कांग्रेसी विधायकों के टीआरएस में विलय को हरी झंडी भी दे दी। दो-तिहाई विधायकों के एक साथ जाने के बाद अब दलबदल का मामला भी नहीं बनेगा। जाहिर है, इतनी बड़ी संख्या में एक साथ विधायकों का टूटना कांग्रेस के लिए एक और बड़ा झटका है। दरअसल, तेलंगाना में कांग्रेस के भीतर यह खिचड़ी पिछले चार महीने से पक रही थी। ऐसा भी नहीं कि कांग्रेस के शीर्षस्तर को इसकी भनक नहीं रही होगी। लेकिन पार्टी को संभालने और बचाए रखने का कोई बड़ा कदम नहीं उठाया गया और इसी का नतीजा रहा कि टीआरएस कांग्रेस को तोड़ने में कामयाब हो गई। इस टूट के बाद तेलंगाना विधानसभा में कांग्रेस का विपक्षी दल का दर्जा खत्म हो गया। जो कांग्रेसी विधायक टीआरएस में शामिल हुए हैं उन्हें कांग्रेस में भविष्य सुरक्षित नहीं लग रहा था। ऐसी सूरत में विधायकों और स्थानीय स्तर पर नेताओं की दूसरे दलों में जाने की होड़ और कवायद सामान्य बात है। यह पार्टी के लगातार क्षीण होने का संकेत है।

पिछले साल दिसंबर में विधानसभा चुनावों के बाद राजस्थान, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में कांग्रेस की जिस तरह से वापसी हुई थी, उससे तो लग रहा था कि पार्टी अब चमत्कार करेगी और लोकसभा चुनाव में उसका प्रदर्शन उल्लेखनीय रहेगा। लेकिन लोकसभा चुनाव में नतीजे उलट आए और कांग्रेस का अपने ही शासन वाले राज्यों से सूपड़ा साफ हो गया। कांग्रेस की बुरी तरह हार से यह साफ हो गया कि लोकसभा चुनाव के लिए पार्टी को जिस तरह से तैयारी करनी चाहिए थी, उसमें वह नाकाम रही। कांग्रेस अध्यक्ष और उनकी कोर टीम पार्टी संगठन में जान फूंकने, चुनावी रणनीति बनाने और जनमानस को भांपने में नाकाम रही। आज हर कोई कांग्रेस की ऐसी हार और दुर्दशा के लिए सवाल पूछ रहा है। पिछली बार लोकसभा में नेता विपक्ष का पद भी उसे नहीं मिला था। तेलंगाना में प्रमुख विपक्षी दल का दर्जा खत्म हो गया। देश पर सबसे ज्यादा समय तक शासन करने वाली पार्टी अगर आज इस हालत में पहुंच जाए तो यह गंभीर बात है।

बात तेलंगाना तक सीमित नहीं है। दूसरे राज्यों में भी जहां पार्टी सत्ता में है, या सत्ता से बाहर है, स्थिति अच्छी नहीं है। पार्टी में असंतोष रह-रह कर सामने आ रहा है। गोवा से भी ऐसे संकेत आ रहे हैं कि कांग्रेस विधायक पार्टी छोड़ सकते हैं। कर्नाटक में भी हालात सुरक्षित और संतोषजनक नहीं हैं। पंजाब में मुख्यमंत्री के खिलाफ उनके ही मंत्री नवजोत सिंह सिद्धू ने मोर्चा खोल रखा है। राजस्थान में मुख्यमंत्री और उपमुख्यमंत्री के बीच टकराव जगजाहिर है और इसका नतीजा लोकसभा चुनाव में देखने को मिला। दिल्ली में सातों लोकसभा सीटों पर कांग्रेस हार गई। सबसे बड़ी बात यह है कि खुद कांग्रेस अध्यक्ष अमेठी सीट पर भारी अंतर से हार गए। अगर ऐसी हालत हो जाए कि पार्टी अध्यक्ष अपनी पारंपरिक सीट तक नहीं बचा पाए तो पार्टी के लिए यह दुर्दिन के संकेत हैं। दो हफ्ते गुजर चुके हैं, पार्टी की हार को लेकर अभी तक किसी की जिम्मेदारी तय नहीं हो पाई है, न कोई हार की जिम्मेदारी लेने को तैयार है। ऐसे में कांग्रेस की स्थिति कब ठीक होगी, कहा नहीं जा सकता।

बेलगाम अपराध

उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ के टप्पल इलाके में महज ढाई साल की बच्ची की हत्या की घटना ने एक बार फिर यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि हमारे समाज में संवेदनशीलता की क्या जगह है, सामाजिक विकास की दिशा क्या है और बढ़ते अपराधों पर लगाम लगाने के मामले में हमारे प्रशासन-तंत्र की क्या भूमिका रह गई है! मासूम बच्ची की हत्या की खबर फैलने और उसके तूल पकड़ने के बाद अब भले ही पुलिस दोनों मुख्य आरोपियों को गिरफ्तार करने और जल्दी कानूनी कार्रवाई पूरा करके उन्हें सजा दिलाने की बात कह रही है, लेकिन ऐसा लगता है कि पुलिस और प्रशासन की नींद तभी खुलती है, जब कोई बड़ी आपराधिक घटना हो जाए और उस पर जनमानस उद्वेलित हो जाए। खबरों के मुताबिक अलीगढ़ में जिस बच्ची की हत्या कर दी गई, उसकी जड़ में सिर्फ दस हजार रुपए थे, जिन्हें बच्ची के पिता ने आरोपी से उधार लिया था। सवाल है कि पड़ोसी होने के बावजूद एक व्यक्ति दस हजार रुपए की वसूली नहीं हो पाने और इस वजह से हुए झगड़े के बाद बदला लेने के लिए एक मासूम बच्ची की हत्या कर देने की हद तक कैसे चला गया?

इस बात की संभावना ज्यादा है कि जो दो आरोपी पकड़े गए हैं, वे पहले से ही आपराधिक मानसिकता के रहे होंगे। ऐसे लोगों के लिए किसी अपराध को अंजाम देते वक्त यह सोचना जरूरी नहीं लगता कि जिसकी हत्या की जा रही है, वह कौन है! एक ओर बच्ची की हत्या करने में भी अपराधियों को कोई संकोच नहीं हुआ, जबकि इस घटना की खबर जहां तक पहुंच सकी है, उसे सुनने के बाद हर संवेदनशील व्यक्ति भीतर से हिल गया। इस घटना में एक अफसोसजनक पहलू यह है कि आरोपी और पीड़ित पक्ष की सामुदायिक पहचान चूंकि अलग-अलग है, इसलिए कुछ लोगों ने इसे सांप्रदायिक रंग देने और उसे बढ़ा-चढ़ा कर पेश करने की कोशिश की। लेकिन समय रहते राज्य के पुलिस महकमे ने घटना के बारे में सारे तथ्य सार्वजनिक रूप से रखे और यही वजह है कि अफवाह पर लगाम लगाने में मदद मिली। वरना मौजूदा माहौल में ऐसे मसले पर जिस तरह लोगों के बीच बिना सोचे-समझे उग्र हो जाने की प्रवृत्ति देखी गई है, उसमें स्थिति के बिगड़ जाने की आशंका बनी हुई थी।

यह हैरानी की बात है कि एक ओर राज्य में अपराधियों पर काबू पाने के दावे बढ़-चढ़ कर किए जा रहे हैं और इसे राज्य सरकार की एक बड़ी उपलब्धि के रूप में पेश किया जा रहा है और दूसरी ओर सामान्य अपराध से लेकर हत्या जैसी जघन्य वारदात तक को अंजाम देने वालों के भीतर पुलिस और प्रशासन का खौफ नहीं रह गया लगता है। यह एक आम हकीकत है कि पुलिस और प्रशासन के कामकाज के तौर-तरीके और अपराधों की रोकथाम को लेकर अपर्याप्त कार्रवाई की वजह से ही असामाजिक तत्त्वों के हौसले बेलगाम हैं। जबकि उत्तर प्रदेश की मौजूदा सरकार के गठन के पहले भाजपा ने राज्य की कानून-व्यवस्था को ही एक बड़ा मुद्दा बनाया था और जनता को सब कुछ ठीक कर देने का भरोसा दिया था। लेकिन सच यह है कि सत्ता में बदलाव के बावजूद अपराधी तत्त्वों पर काबू पाने के नाम पर कुछ विवादास्पद कार्रवाइयों को छोड़ कर जमीनी स्तर पर इस मसले पर कोई खास सुधार देखने में नहीं आया है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि अगर कानूनी कार्रवाई का भय हो तो अपराधी मानसिकता वाले लोगों की हरकतों पर काफी हद तक लगाम लगाई जा सकती है।

कल्पमेधा

पढ़ना एक गुना, चिंतन दो गुना
और आचरण चौगुना।
-विनोबा भावे

जल संकट और समाधान

मनीष वैद्य

पानी सहेजने के कुछ छोटे और खरे उपाय जैसे स्थानीय पारंपरिक जलस्रोतों को संरक्षित करने, बरसाती पानी का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करने, नदी-नालों में छोटे बांध और तालाब बनाने आदि में अब समाज और सरकार दोनों की दिलचस्पी खत्म हो गई है। इन कामों को अब अनावश्यक माना जाने लगा है। समाज को हमने कभी जल साक्षर नहीं बनाया। नई पीढ़ी के लोगों का पानी के मामले में ज्ञान बहुत थोड़ा और सतही है।

जल संकट लगातार गहराता जा रहा है। लेकिन इसका असली समाधान भी हमारी प्रकृति में ही छिपा है। प्रकृति ही जल संकट का स्थायी और सहज समाधान कर सकती है। प्रकृति ने हजारों सालों से पानी की सुगम उपलब्धता और पर्याप्तता बनाए रखी है। हमारा समाज सदियों से बुद्धिमत्ता और प्राकृतिक नीति-नियमों के अनुसार ही प्रकृति के संग्रहीत पानी में से न्यूनतम जरूरत के लिए पानी लेता रहा, उसे बढ़ाता रहा, बारिश के पानी को सहेजता रहा। उसने बारिश के संग्रहीत पानी का दोहन भी किया, लेकिन लालच में आकर अंधाधुंध नहीं। हमारे पूर्वज हजारों सालों से इसका समझदारीपूर्वक उपयोग करते रहे। लेकिन पिछले पांच-छह दशकों से समाज ने पानी को अपने सीमित हितों के लिए अंधाधुंध खर्च कर पीढ़ियों से चले आ रहे समाज स्वीकृत प्राकृतिक नीति-नियमों की अनदेखी करनी शुरू की है, तभी से पानी की समस्या बढ़ती चली गई। हमने अब भी प्रकृति के आधार पर समाधान करने का प्रयास नहीं किया तो आने वाली पीढ़ियां कभी भी पानी से लबालब जलस्रोतों को देख भी नहीं सकेंगी।

पिछले कुछ सालों में हम पानी के मामले में सबसे ज्यादा घाटे में रहे हैं। कई जगहों पर लोग एक-एक बाल्टी पीने के लिए मोहताज हैं, तो कहीं पानी की कमी से खेती तक नहीं हो पा रही है। भूजल भंडार तेजी से खत्म होता जा रहा है। कुछ फीट खोदने पर जहां पानी मिल जाया करता था, आज वहां आठ सौ से बारह सौ फीट तक खोदने पर भी धूल उड़ती नजर आती है। सदानीरा नदियां अब दिसंबर तक भी नहीं बहतीं। ताल-तलैया सूखते जा रहे हैं। कुएं-कुंडियां अब बचे नहीं हैं। बारिश का पानी नदी-नालों में बह जाता है और हम जमीन में पानी ढूंढ़ते रह जाते हैं। लोग पानी के लिए जान के दुश्मन हुए जा रहे हैं।

जल ही जीवन का आधार है। जल के बिना जीवन की कल्पना बेमानी है। पानी को किसी भी प्रयोगशाला में नहीं बनाया जा सकता। प्यास दुनिया की सबसे बड़ी त्रासदी है और भारत के लिए तो और भी ज्यादा बड़ी। जिस देश में कभी 'पग-पग नीर' की उक्ति कही जाती रही हो, वहां अब पानी की यह कंगाली हमें बहुत शर्मिंदा करती है। कहा जाता है कि जल है तो कल है, पर अब इसे एक सवाल की तरह देखा जाना चाहिए कि जल ही नहीं होगा तो कल कैसा? पर्यावरण की समझ रखने वाले लोगों को यह सवाल बड़े स्तर पर चिंतित कर रहा है।

इधर कुछ ही सालों में हमने पानी के अकूत भंडारों को गंवा दिया और अब प्यास भर पानी के लिए सरकारों के मोहताज होते जा रहे हैं। प्रकृति ने हमें पानी का अनमोल खजाना सौंपा था, लेकिन हम ही सदुपयोग नहीं कर पाए। हमने उत्पादन और मुनाफे की होड़ में धरती की छाती में गहरे से गहरे छेद कर हजारों सालों में संग्रहीत सारा पानी उलीच लिया। नलों में पानी क्या आया, कुएं-कुंडियां पाट दीं। तालाबों की जमीन पर अतिक्रमण कर लिया। नदियों का मीठा पानी पाइप लाइनों से शहरों तक भेजा। अब हर साल सूखा और जल संकट हमारी नियति बन गए हैं। साल-दर-साल बारिश के आंकड़े कम से कमतर होते जा रहे हैं। इस साल भी लगातार पांचवें साल देश के कई हिस्सों में सूखा पड़ा है। देश के बीस करोड़ छोटे किसान खेती के लिए मानसून पर निर्भर होते हैं। साल-दर-साल भूजल स्तर तीन फीसद से ज्यादा की दर से घट रहा है। जंगल कम होते जा रहे हैं, जबकि नदियों तक पानी पहुंचाने में जंगलों का बड़ा योगदान होता है। इसका असर वन्यजीवों पर भी पड़ रहा है। गर्मी शुरू होते ही पानी के लिए वे गांवों और बस्तियों की तरफ आने लगते हैं। जंगलों के पोखर, नदी-नाले सूख जाने से उनके सामने पीने के पानी का संकट खड़ा हो जाता है। वन्य प्राणियों की तादाद घटने के पीछे भी वन्य प्राणी विशेषज्ञ जल संकट को बड़ा कारण मानते हैं। इससे जैव-विविधता के लिए भी बड़ा संकट खड़ा हो गया है। नर्मदा में कुछ साल पहले तक सत्तर से ज्यादा प्रजातियों की मछलियां हुआ करती थीं, लेकिन जगह-जगह बांध बन जाने से यह संख्या अब महज चालीस प्रजातियों तक सिमट गई है।

जब प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की जगह उनका शोषण किया जाने लगता है तो फिर समाज को ऐसे ही संकटों का सामना करना पड़ता है। जल

संकट इसका एक बड़ा रूप है। लेकिन इससे कई बातें जुड़ती हैं। ग्लोबल वार्मिंग, जंगलों का घटना, जैव-विविधता और वन्य प्राणियों की तादाद में कमी, खेती के संकट और सेहत पर असर आदि कई रूपों में सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय संकटों का सामना करना पड़ रहा है। आने वाले कुछ सालों में ये खतरे हमारे सामने और बड़ी चुनौतियों के रूप में दिखने लगेंगे। समाज और सरकारों ने व्यक्ति की बुनियादी जरूरत और जिंदगी के लिए सबसे अहम होने के बाद भी पानी को कभी अपनी प्राथमिकता सूची में सर्वोच्च स्थान नहीं दिया। हमेशा इसके लिए कामचलाऊ तरीके ही अपनाए गए। इन पर कभी भी समग्र और दूरगामी परिणामों को सोचते हुए फैसले नहीं किए गए। प्राकृतिक संसाधनों के पर्यावरणीय हितों की लंबे समय तक लगातार अनदेखी की जाती रही। ग्लोबल वार्मिंग से ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। ग्लेशियर पानी के पारंपरिक स्रोत रहे हैं और हिमालय से आने वाली गंगा सहित अन्य नदियां इन पर निर्भर हैं। सिर्फ नदियां नहीं, इन पर आश्रित करीब चालीस करोड़ से ज्यादा लोगों पर भी इसका बुरा असर पड़ सकता है। ग्लोबल वार्मिंग का सबसे बड़ा खतरा बारिश पर होगा। बारिश की अनिश्चितता और भी बढ़ सकती है। यह जुड़ी है सीधे तौर पर हमारी खेती से। इसलिए आने वाला वक्त किसान और किसानी दोनों के लिए ज्यादा चुनौतीभरा है।

हमने अपने पारंपरिक व प्राकृतिक संसाधनों और पानी सहेजने की तकनीकों व तरीकों को भुला दिया है। स्थानीय रिवायतों को बिसरा दिया और लोगों के परंपरागत ज्ञान और समझ को हाशिये पर धकेल दिया। पढ़े-लिखे लोगों ने समझा कि उन्हें अनपढ़ों के अर्जित ज्ञान से कोई सरोकार नहीं और उनके किताबी ज्ञान की बराबरी वे कैसे कर सकते हैं! जबकि समाज का परंपरागत ज्ञान कई पीढ़ियों के अनुभव से छनता हुआ लोगों के पास तक पहुंचा था। समाज में पानी बचाने, सहेजने और उसकी समझ की कई ऐसी तकनीकें मौजूद रही हैं, जो अधुनातन तकनीकी ज्ञान के मुकाबले आज भी ज्यादा कारगर साबित हो सकती हैं।

पानी सहेजने के कुछ छोटे और खरे उपाय जैसे स्थानीय पारंपरिक जलस्रोतों को संरक्षित करने, बरसाती पानी का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करने, नदी-नालों में छोटे बांध और तालाब बनाने आदि में अब समाज और सरकार दोनों की दिलचस्पी खत्म हो गई है। इन कामों को अब अनावश्यक माना जाने लगा है। समाज को हमने कभी जल साक्षर नहीं बनाया। नई पीढ़ी के लोगों का पानी के मामले में ज्ञान बहुत थोड़ा और सतही है। उन्हें नए समय की तकनीकों और किताबी ज्ञान का बोध तो है, पर जीवन के लिए सबसे जरूरी पानी के इस्तेमाल और इस बारे में जरूरी जानकारी नहीं है। मसलन, पानी कहां से आता है, बरसाती पानी को कैसे सहेजा जा सकता है, नदियों और तालाबों के खत्म होते जाने के दुष्परिणाम क्या होंगे, इनके मनमाने दोहन का क्या असर पड़ेगा.. आदि। हमें इन मुद्दों पर समझ बढ़ानी होगी। जल-जंगल और जमीन के आपसी संबंधों को समझने की नए सिरे से कोशिश करनी होगी। अकेले बड़ी लागत की योजनाएं बना लेने या पानी के लिए हमेशा नदियों और जमीनी पानी पर निर्भर रहने भर से जल संकट का निदान संभव नहीं है।

संतोष का सागर

मनोज निगम

दुनिया मेरे आगे

बढ़ती गरमी के मौसम में दोपहर की तपन हम सबको महसूस होती है। चिलचिलाती धूप, बेहद गर्म हवा और सांय-सांय करती गाड़ियों के अलावा कुछ राहगीर उदयपुर की उबलते डामर की एक सड़क पर चलते हुए दिख जाते हैं। सड़क के दोनों किनारों पर पेड़ हैं। पेड़ों की जालीदार छाया और अधिक सुकून देती दिखती है, उस प्रेमी जोड़े को भी, जो गमछा-दुपट्टे में ढंका इतनी धूप में साथ-साथ है। कुछ सन्नाटा होता है तो सिकाड़ा यानी तवरी की आवाज माहौल को और अधिक रहस्यमय बना देती है। जब मैं यह देख-समझ रहा था, तो वहां मेरे आसपास ही विद्या भवन का स्कूल दिखा।

इस स्कूल से बच्चे जब दोपहर बाद निकलते हैं तो थोड़ी देर तक उनकी चहचहाहट से माहौल खुशनुमा हो जाता है। फिर वही सन्नाटा, स्कूल के पास ही एक बड़ा-सा आशियाना है, जिस पर मोहम्मदी मंजिल लिखा था। ठीक सामने ही एक पेड़ की छांव में तीन मटकों में पानी, तीन-चार स्टील के गिलास रखे संतोष बाई मिलीं। एक टूटी हुई टाईल की पट्टी पर कुछेक सिक्के नजर आए। चिलचिलाती धूप में पेड़ की पत्तियां मुरझा जाने के बावजूद छाया और सुकून, दोनों दे रही थीं। यही संतोष बाई भी उम्र का अनुभव लिए कर रही हैं। उन्हें देख कर याद आता है कि राजस्थान की मरुभूमि के बारे में कहते हैं, कभी यहां समुद्र था और लहरों पर लहरें उठतीं थीं। काल की लहरों ने अथाह समुद्र को न जाने क्यों और कैसे सुखाया होगा!

अब यहां रेत का समुद्र है। लहरों पर लहरें अब भी उठती हैं। लगभग यही कहानी संतोष बाई की भी है, थोड़ी-सी प्यार से बात क्या कर ली कि एक लहर का झोंका अंतर्मन को झझकोर कर चला गया। एक ही साथ उन्होंने पति, एक बच्चे के न रहने के बाद जीवन की निरंतरता को बनाए रखने की कहानी सुना दी। हमारे तेज रफ्तार वाले महानगर में कोई अनजान से ऐसी बातें करता है भला! उन्होंने कहा कि मैं पानी पिलाने के पैसे नहीं लेती। कोई दे देता है तो मना भी नहीं करती। और विद्या भवन के बच्चों से तो पैसे नहीं लेती। मेरी एक बच्ची भी तो इसी स्कूल से पढ़ी है। संतोष बाई के माध्यम से इसे किसी इलाके की उदारता के रूप में भी देख सकते हैं जो कहे कि आप तो परदेसी लगते हैं, आप मेहमान हैं, आपसे पैसे क्या लेना!

एक वक्त था जब पानी पिलाना पुण्य का काम हुआ करता था। आज यह सबसे बड़ा धंधा हो गया है और इस धंधे को आगे बढ़ाने में हमारे नेता भी कम नहीं हैं। कोई हैंडपंप उखाड़ने में लगा है और कोई पानी की मशीनों को खपाने में। यह कहा जाता है कि अगला विश्व युद्ध किसी विचारधारा, राष्ट्रवाद या फिर तेल के लिए नहीं, पानी के भंडार के अधिकार को लेकर ही होगा। यों तो इस दौर में हर स्तर पर युद्ध जारी है, लेकिन पानी के धंधे में व्यावसायिक युद्ध का घमासान है। स्टेशनों पर देखें तो कुछ धर्मार्थ संस्थाओं के कार्यकर्ता पानी देते नजर आ जाएंगे, लेकिन बड़ी-बड़ी कंपनियों के लगाए पानी के एटीएम कितना पानी उगल रहे हैं, अध्ययन का विषय है। सार्वजनिक स्थानों पर मुफ्त स्वच्छ पेयजल मुहैया कराना क्या सरकार की जिम्मेदारी नहीं है?

असल में जैसे-जैसे शहरों का फैलाव बढ़ रहा है, हम मटकों से फ्रिज और पेड़ों से एयरकंडीशन की तरफ जा रहे हैं, वह आगे जाकर एक विकराल समस्या का रूप निश्चित रूप से लेगा ही। पानी की समस्या उसके गलत और लापरवाह प्रबंधन के कारण भी विकराल रूप ले रही है। नीति आयोग के समग्र जल सूचकांक- 2018 के मुताबिक, साठ करोड़ लोग, यानी लगभग आधी भारतीय आबादी गंभीर जल संकट का सामना कर रही है। इससे भी ज्यादा बुरी खबर यह है कि उपलब्ध पानी का सत्तर फीसद हिस्सा दूषित हो चुका है। इसके अलावा, सन 2020 तक दिल्ली, बंगलुरु, चेन्नई और हैदराबाद में भू-जल का स्तर काफी नीचे चला जाएगा और 2030 तक भारत की चालीस फीसद आबादी पीने के साफ पानी को तरसेगी। उसके बावजूद यह आंकड़ा मिल जाएगा कि पानी का सालाना धंधा हजारों करोड़ों रुपए का है और सबसे अधिक रफ्तार से आगे बढ़ रहा है।

ऐसा क्यों हुआ कि जो समाज पानी पिलाने को पुण्य के रूप में देखता रहा है, उसे अब बाजार के पानी पर निर्भर होने पर मजबूर कर दिया गया है? क्या हमारी सरकार ने जनता के प्रति अपनी जवाबदेही के सवाल को खारिज कर दिया है और समाज ने यह सवाल उठाना बंद कर दिया है? ऐसे में संतोष बाई उस समाज की एक प्रतिनिधि के तौर पर राहत देती हैं जो कंठ की प्यास से अंतर्मन की प्यास बुझाने की एक बड़ी लड़ाई में आधुनिक 'इस्तेमाल करो और फेंको' की मानसिकता को तीन मटके सामने रख कर टक्कर दे रही हैं। वे तपती दुपहरी में एक गिलास ठंडा पानी देकर एक अजनबी से कहती हैं- 'पधारो सा..!' यह सुनते ही आंख में से एक रजत बूंद लुढ़कती है और उस प्यार के उफनते हुए संतोष के सागर में जाकर मिल मिल जाती है।

कृषि का संकट

किसान सम्मान निधि योजना के तहत अब सभी किसानों को सालाना 6,000 रुपए मिलेंगे। साथ ही उनके लिए पेंशन योजना का ऐलान भी किया गया है। लेकिन क्या इससे किसानों की मौजूदा हालत में सुधार हो पाएगा? कृषि संकट का समाधान, किसानों की पैदावार और उनके आर्थिक हालात को बेहतर बनाना सरकार की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। यह संकट इतना विकराल रूप धारण कर चुका है कि उसमें सुधार के लिए सरकार को तुरंत उपाय सोचने होंगे। नीति आयोग के अनुसार पिछले दो साल यानी 2017-18 में किसानों की आय में वास्तविक बढ़ोतरी लगभग शून्य हुई है तथा उसके पिछले पांच सालों में हर साल आधा प्रतिशत से भी कम बढ़ोतरी हुई है। यानी सात सालों से किसानों की आय में वृद्धि न के बराबर हुई है।

देश में किसानों की स्थिति सुधारने के लिए सबसे बड़ी जरूरत है खेती की बुनियादी सुविधाओं पर खर्च किया जाए। आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक 2000-2017 के बीच में किसानों को 45 लाख करोड़ रुपए का नुकसान हुआ क्योंकि उन्हें उनकी फसलों का समुचित मूल्य नहीं मिला। कई दशकों से हम विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्य वैश्विक संस्थानों की आर्थिक सोच के मुताबिक अपनी वित्तीय नीतियां बनाते रहे और उन नीतियों को व्यावहारिक बनाने के लिए कृषि को हाशिये पर रखा जाता रहा है। 2016 के आर्थिक सर्वे में 17 राज्यों में किसान परिवार की आय 20 हजार रुपए सालाना से कम रही यानी 1,700 रुपए मासिक या लगभग 50 रुपए दैनिक। सवाल है कि इस आय में कोई परिवार कैसे पलता होगा? खेती में पैसा नहीं है, उसके मजदूरों के पास काम नहीं है। ऐसे में दो चीजें करने की जरूरत है। लोगों को गांव से निकाल कर शहर में लाना यह विकास का मॉडल नहीं है। किसानों के लिए कृषि से इतर स्थानीय रोजगार योजनाएं बनाकर उन्हें संपन्न करने की जरूरत है। इससे मांग पैदा होगी। उद्योग या एफएमसीजी उत्पादों की मांग बढ़ेगी और उद्योग का पहिया स्वतः चल पड़ेगा।

सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को उद्योग के लिए 'बूस्टर डोज' बताया जा रहा है लेकिन यदि गांव पर ध्यान दिया गया तो वह वृद्धि का 'रॉकेट डोज' होगा क्योंकि उससे इतनी मांग बढ़ेगी कि हमारी अर्थव्यवस्था बहुत तेजी से दौड़ेगी। अभी हम सात फीसद के आसपास हैं, वैसा करने से हम चौदह फीसद तक भी पहुंच सकते हैं। उद्योग के लिए तो 'ईज ऑफ डूइंग बिजनेस' की बात की जाती है लेकिन किसानों के लिए 'ईज ऑफ डूइंग फार्मिंग' की बात क्यों नहीं की जाती? मंडी हो, उत्पादन हो या प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में मुआवजा ही लेना हो, किसानों को हर कदम पर दिक्कतें आती हैं। उनकी ये समस्याएं खत्म हो जाएंगी तो अर्थव्यवस्था समृद्ध होगी। यानी कृषि को संकट से उबारने के लिए सरकार को इस क्षेत्र में निवेश, जल संकट, आधारभूत सुविधाओं के साथ ही लघु अवधि और दीर्घावधि वाले कई बड़े फैसले लेने पड़ेंगे। कुल मिला कर कृषि में सुधार का रास्ता गांव के रास्ते ही जाएगा।

● *संजीव कुमार, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश*

स्वार्थ के सगे

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप द्वारा भारत को व्यापारिक वरीयता सूची यानी जीएसपी से बाहर करने से साफ हो गया है कि वे भारत से दोस्ती के अलावा कुछ और भी चाहते हैं। जीएसपी यानी जनरलाइज्ड सिस्टम ऑफ प्रिफरेंसेजेस की सुविधा अमेरिका कुछ मुल्कों को देता है जिसके तहत उनके उत्पादों को अमेरिका में बिना शुल्क आयात की अनुमति है। भारत, जिससे मात्र 21.3 अरब डॉलर का घाटा है, उससे यह सुविधा वापस लेना और चीन से 566 अरब डॉलर का घाटा होने पर भी यह सुविधा बरकरार रखना ट्रंप के भारत के साथ संबंधों की हकीकत की ओर इशारा कर रहा है ।

● *उर्विजा पांडेय, रीवा, मध्यप्रदेश*

फिर हैवानियत

अलीगढ़ में ढाई साल की बच्ची के साथ हैवानियत की खबर सामने आई है। उसकी नृशंस हत्या करके शव कूड़े के ढेर में फेंक दिया गया था। मामला बच्ची के पिता और आरोपी के बीच महज दस हजार रुपए के लेन-देन का था लेकिन आरोपी ने अपना गुस्सा मासूम बच्ची पर निकाला। ऐसी विकृत मानसिकता वाले हत्यारों को न्यायालय द्वारा जल्दी से जल्दी मिसाल बनने वाली सजा देनी चाहिए ताकि भविष्य में ऐसा अपराध करने की किसी की हिम्मत न हो।

● *बृजेश श्रीवास्तव, गाजियाबाद*

अलग रास्ते

जीत के सौ अभिभावक होते हैं लेकिन पराजय हमेशा लावारिस होती है। उसका आगे-पीछे कोई नहीं होता। उत्तर प्रदेश की राजनीति में हमने देखा कैसे गठबंधन बना। आशातीत सफलता नहीं मिली तो यह गठबंधन ताश के पत्तों की तरह बिखरने लगा। कल तक सपा, बसपा और आरएलडी साथ जीने-मरने की कसमें खा रहे थे पर अब तीनों ने अगला उपचुनाव अलग-अलग लड़ने का ऐलान कर दिया है। मायावती, जो कभी उपचुनाव नहीं लड़ती थीं, अब किन कारणों से इसमें दिलचस्पी दिखा रही हैं? मायावती का सपा पर आरोप पूर्ण सत्य नहीं है।

यह बात ठीक है कि मुलायम सिंह यादव के परिवार में आपसी फूट हो गई और दल ने ठीक से प्रदेश में प्रचार भी नहीं किया। मगर सपा का वोट बसपा को हस्तांतरित नहीं हुआ यह कहना ज्यादती होगी क्योंकि मायावती शून्य पर थीं और अब दस पर पहुंच गई हैं। दरअसल, गठबंधन के नेताओं को अति आत्मविश्वास हो गया था इसलिए अखिलेश यादव और मायावती दोनों उत्तर प्रदेश छोड़ कर अन्य प्रदेशों में प्रचार कर रहे थे। अब कार्यालय और घर में बैठकर चुनाव जीतना नामुमकिन है। नेताओं को 365 दिन जनता से जुड़ना होगा। उसके मुद्दे उठाने होंगे वरना वही हश्र होगा जो आज विपक्ष का हुआ है।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है :
chaupal.jansatta@expressindia.com